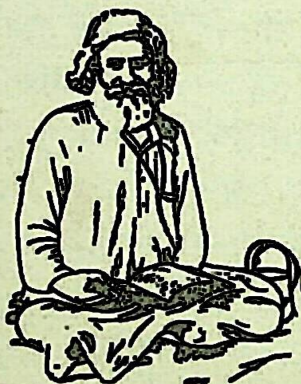
॥ ओ३म् ॥

भूर्भुव स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

संभलो !



श्रीयुत पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी
महाराज के पवित्र विचारों का समन्वय
जो आपने प्रकट किये ।

प्रकाशक :

श्री म० व्यासदेव जी अधिष्ठाता वै० भ० सा० आ० रोहतक
की सौजन्यतापूर्ण प्रेरणा से
श्रीमती तृप्ता देवी जी कक्कड़ परिवार [मलकागंज देहली]
से प्राप्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित ।

पंचम आवृति २२००] चैत्र सं. २०५४ वि.; १९९७ ई. [मूल्य ३-००

॥ ओ३म् ॥

प्राक्कथन

इस ट्रैक्ट "संभलो" के प्रथम तीन संस्करणों का तो हमें कुछ ज्ञान नहीं—कौन प्रकाशक थे और किस प्रेस में, कहां से प्रकाशित हुए। अब यह पंचम संस्करण आश्रम के माननीय अधिष्ठाता श्री म० व्यासदेव जो वान० की पवित्रप्रेरणा से मल्कागंज (देहली) की पूज्या माता श्रीमती तृप्ता देवी के पवित्र द्रव्य से प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है पाठकजन इसे पढ़कर आचरण में लाकर लाभ प्राप्त करेंगे और अन्यों को भी सद्प्रेरणा देकर पुण्य के भागी बनेंगे।

विनीत—प्रभुभिक्षुः

कृते—म० प्रभु आश्रित साहित्य प्रकाशन विभाग
वैदिक भक्ति साधन आश्रम,
रोहतक-१२४००१

पर्व नव संवत् २०५४ वि०
सन् १९९७ अप्रैल



ओ३म्

यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घास्याऽहं ।

स्युष्टे सत्या इहाशिषः ।। ऋ० ८-४४-२३

शब्दार्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप (यत् अहं त्वं स्याम्) जब मैं तू हो जाऊं (वाघ) या (त्वं अहं स्याम्ः) तू मैं हो जाय तो (ते इह आशिषः) तेरे इस संसार के वे सब आशीर्वाद (सत्याः स्युः) सत्य सफल हो जाएं ।

फारसी के कवि ने कहा हैः—

मन तन शुदम, तू जां शुदी
मन तू शुदम तू मन शुदी
ता कस न गोयद बाद अजीं
मन दीगरम तू दीगरी ।

इस मंत्र में भक्त की अंतिम भावना है । जीवात्मा की अनादि काल से ही इच्छा चली आती है कि वह प्रभु से मिले । ईश्वर और जीव दोनों चेतन सत्ताएं हैं । ईश्वर आनन्द का केन्द्र है जीव में उसकी कमी है अतः वह आनन्द को पाने का इच्छुक बना रहता है । परन्तु वह बहुत दूर है ।

दूरी का कारण

कोयला काला है। काला तब हुआ जब अग्नि से जुदा हुआ। जब अग्नि के संग में चला जाए तो एक क्षण नहीं लगेगा, अग्नि सा बन जाएगा। आत्मा के ऊपर जो कालक आई हुई है, वह परमात्मा से जुदा हो जाने के कारण है। जितने भी साधन हम करते हैं यह सब उस दूरी को हटाने के साधन हैं। यज्ञ, दान, तप, परोपकार, सत्संग आदि यह सब परमात्मा से दूरी हटाने और उस की प्राप्ति कराने के साधन हैं।

जैसे इस शरीर के सुख के लिए हम अन्न, धन आदि पैदा करते हैं, वैसे यह यज्ञ, दान, तप आदि आत्मा को सुख पहुंचाने के लिए किए जाते हैं।

प्रभु का धन्यवाद करो

सैंकड़ों हजारों आदमी कारावास में बन्द पड़े हैं जेल बाहर से बन्द है। हम भी बन्दी हैं पर अन्दर से तभी हम सत्सङ्ग आदि से वंचित हैं। इसी प्रकार हस्पतालों में हम जैसे कितने व्यक्ति पड़े हैं

जिनको तरह-२ के रोगों ने बांध रखा है-वह भी सत्संग आदि से वंचित हैं। अन्तःकरण को शुद्ध करने के सर्व साधनों से लाचार हैं। हम भी रोगी हैं, हमें भी बहुत से रोग लगे हुए हैं परन्तु हमने रोगों को कन्धे पर उठाया हुआ है। प्रभु का धन्यवाद करो कि बन्दी और रोगी होते हुए भी परमेश्वर की दया हम पर बरस रही है और हम उसको प्राप्त कर रहे हैं और सत्संग आदि का लाभ उठा सकते हैं।

शरीर की शक्ति सीमित

इस शरीर की शक्ति बहुत सीमित है। आंख सुन्दर है। उसकी देखने की शक्ति सीमित है। दीवार के बाहर नहीं देख सकती। कान सुनते हैं परन्तु बहुत दूर की आवाज नहीं सुन सकते! नासिका बहुत दूर की गन्ध को ग्रहण नहीं कर सकती। जिह्वा तो इससे भी अधिक असमर्थ है। जब तक कोई वस्तु उसके निकटतम न लाई जाए, वह उसका स्वाद नहीं बता सकती। परन्तु मन पर कोई बन्धन नहीं लगा सकता। वह कोटि मीलों की दूरी पर उड़ान कर सकता है। उसकी गति बड़ी अद्भुत् है। उसका जानना बड़ा कठिन है। उस को मानसरोवर कहा है।

मानसरोवर और समुद्र की समानता

इस की यात्रा बड़ी कठिन है। लोग दूर राज पर्वतीय प्रदेशों की, बदरी नारायण आदि की, यात्रा कर आते हैं। परन्तु मानसरोवर की यात्रा जहां कहते हैं, हंस रहते हैं, बहुत ही कठिन है। कोई विरला ही जाता और कर पाता है। यह मन भी सरोवर है और इसको मनसरोवर कहते हैं। इस सरोवर की यात्रा कोई विरला ही करता और वहां तक पहुंचता है। यह सरोवर की तरह बहता है और इसके अन्दर वही लहरें चलती हैं जो समुद्र में बहती हैं।

लहरें कहां उठती हैं ?

समुद्र में लहरें छः प्रकार की उठती हैं—

१. जब पवन चलती है। उसके अन्दर तरंगें पैदा होती हैं।

२. मच्छलियां मगरमच्छ और अन्य छोटे-२ जन्तु जब फुदकते हैं तो तरंगे उठती हैं।

३. जब किसी ने बट्टा फेंक दिया, तरंग पैदा हो गई।

४. जब मनुष्य उसमें नहाने लगता है, उस में लहरें पैदा होती हैं।

५. अमावस्या और पूर्णमाशी को जब समुद्र में ज्वार भाटा आता है तो लहरें उठती हैं। पूर्णमाशी और अमावस्या की तरंगों में बड़ा भेद है। पूर्णमाशी को जल ऊपर उठता है और अमावस्या को नीचे जाता है। पूर्णमाशी को Rise (ऊपर उठना) करता है, अमावस्या को Depression (नीचे) होती है।

६. उद्गम स्थान से जहां से जल निकलता है, लहरें पैदा होती हैं। और वह जल को आगे-२ धकेल कर ले जाती हैं।

इसी प्रकार मन के अन्दर लहरें उठती हैं और उसे शान्त नहीं होने देतीं।

एक वह प्राण है जो हम हर समय श्वास के रूप में ले रहे हैं। दूसरा वह प्राण है जिससे शरीर का निर्माण हुआ। आकाश, जल, पृथ्वी आदि के साथ। तीसरा वह प्राण जो सूक्ष्म है और जीवन शक्ति देता है और आत्मा के साथ रहता हैं। शरीर छूटने के बाद भी साथ रहता है। यह सूक्ष्म प्राण गति देने वाला है मन को हर समय गति देता आगे-२ चलता है।

दूसरा पवन—वह जो शुद्ध करता है। प्रातःकाल

जब हम उठते हैं उस समय हमारे अन्दर सात्विकता होती है। परमेश्वर का नाम लें, न लें यह सात्विकता स्वाभाविक होती है। यदि मनुष्य के अन्दर सात्विकता न आती तो मनुष्य जी नहीं सकता। यह सन्धिकाल है। उस समय दोनों स्वर इकट्ठे चलते हैं।

स्वर दो हैं, सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर। यह स्वर बारी-बारी से चलते रहते हैं। हर घण्टे के बाद स्वर बदलता है। हर बदलते समय दोनों स्वर इकट्ठे होते हैं। उस समय सुषुम्णा खुली हुई होती है। उस समय के लिए शास्त्रकारों ने कहा कि—

१. सन्धिकाल में सोना पाप है।

२. उस समय न जल ग्रहण करें न अन्न ग्रहण करें।

३. उस समय परमेश्वर का नाम लेना चाहिए।

४. उस समय में मन की सम अवस्था होती है। उसमें न रोग होता है न कोई विकार होता है। यह शुद्ध करने वाला पवन है।

कोई मनुष्य ऐसा नहीं जिसके अन्दर यह पवन संधिकाल में न चलते हों।

मन:सरोवर में जो मेंडक, डडू मीन आदि फुदकते

हैं, वे हैं, वासनाएं। हमारे अन्दर कोई भी वासना जगी, वह गोलाकार बन जाती है। उसको वृत्ति कहते हैं। वह वृत्ति कर्म पैदा करती है और कर्म फल को, और फल फिर बीज को पैदा करता है। यह चक्र चलता ही रहता है, इसलिए हमारी वासनाएं अनन्त हैं जो जागती रहती हैं।

समुद्र की तरह मन में भी ज्वारभाटा आता है कभी वैराग्य का कभी उदासीनता का। जिस प्रकार समुद्र में पूर्णमाशी का ज्वारभाटा आया, तो जल की तरंगें बहुत ऊंची-ऊंची उठती हैं मानो वह अपने प्रियतम चन्द्र से मिलना चाहती हैं। ऐसे ही जब वैराग्य की तीव्र तरंगें उठीं तो पिया (परमात्मा) को मिलने के लिये व्याकुल हो एक महान पग उठा लिया जैसे महात्मा बुद्ध और ऋषि दयानन्द ने किया।

अमावस्या ज्ञान की है, पूर्णमाशी वैराग्य की है। जिस प्रकार अमावस्या की रात्रि को समुद्र में ज्वार भाटा आते ही समुद्र का जल नीचे को चला जाता है, इसी प्रकार किसी घटना के उपस्थित होते ही ज्ञान सागर में जब गहरी डुबकी लगाता है तो असलियत

तक पहुँच जाता है। ऐसी अवस्था का यह मन्त्र कहता है। अब हम समझें। आँख ने देखा उसी क्षण लहर पैदा हो गई। कान ने सुना उसी दम लहर पैदा हो गई। (इसका नाम है बट्टा फेंकना)। ये बाहर के बट्ठे हैं। जो मौन होकर आत्म चिन्तन करने वाले हैं उनको इसका पता होता है। वीर पुरुष को कोई चोट नहीं लगती, भीरू आदमी को बड़ी चोट लगती है। महात्मा बुद्ध भीरू थे तो चोट से डर गए। आवागमन के चक्र की चोट से डर गए। ऋषि दयानन्द भीरू था। उसको चोट लग गई। भगनी को मरते देखा, गुमसुम हो गये और मन ही मन में विचार करने लगे कि मेरी भी ऐसी ही गति होगी। विचार अभी मन्द नहीं हुआ था कि चाचा की मृत्यु का दृश्य सम्मुख आया। जैसे भीरू शत्रु को देख भाग जाते हैं, ऐसे काल रूपी शत्रु को देख घर से भाग निकला। परन्तु हम हैं संसारी लोग जो सहस्रों को मरते देखते हैं और टस से मस न हुए। कठोर हृदय बन गए।

एक दृष्टांत—एक ब्राह्मण देवता गंगा में स्नान कर रहा था और वेद की निम्न सूक्तियाँ जल देवता की स्तुति में गा रहा था :—

आपो हिष्ठा मयोभुवस्तानऽऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ।।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेहनः ।
उशतीरिव मातरः ।।

तस्मा अरंगमा वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जन यथा च नः ।। यजु० ३६-१४-१५-१६ ।

जल में रहने वाली एक मीन ने सुना और हंस कर कहने लगी—कितना मूर्ख है यह, जल देवता की इतनी प्रशंसा कर रहा है । हम दिन रात चौबीस घण्टे जल मे रहते हैं, इसी में हगते, मूतते हैं, हम तो नहीं जानते कि जल इतना स्तुत्य है । ब्राह्मण ने सुना, सोचा कि मीन हास्य कर रही है । अपने जीवन आधार का महत्व इसे मालूम नहीं । झट उसे पकड़ा और जल के बाहर फेंक दिया । अब मीन तड़पने लगी । उसे भान होने लगा कि जल के बिना तो मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती । सत्य कहा है :—

"कदरे आफीयत ग्रा बिदानद
कि ब मुसीबते गिरफतार आयद"

सलामती की कदर उसे मालूम होती है जो आपत्ति में घिर जाय। अब ब्राह्मण देवता को अनुनय विनय करने लगी, कृपा करके मुझे फिर इसी जल में डाल दो। मैं नहीं जानती थी कि यह मेरे जीवन का आधार है। मैं तो एक क्षण भी इसके बिना जीवित नहीं रह सकती। ब्राह्मण दयालु था। उसने मीन को फिर से जल में डाल दिया तो प्राण पाए।

अभी हम परमात्मा की जरूरत और जुदाई को नहीं समझते। बुद्धिमान को बुद्धि का महत्व तब मालूम होता है, जब भगवान उसकी बुद्धि को जरा सा इधर उधर कर देता है अर्थात् पागल कर देता है तो लोग बट्टे मारते हैं।

धनवान को पता तब चलता है जब दीवालिया हो जाता है।

बलवान को पता तब लगता है जब रोगी हो जाए,

शासक को तब पता लगता है जब पदच्युत हो जाए, इसलिये वेद भगवान् ने फरमाया :—

भरेष्विन्द्रं सुहवंहवामहे ऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।

अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ।। ऋ० १०–६३–६ ।।

अर्थात्–हम (भरेषु) यज्ञों में (स्वस्तये)योग क्षेम और कल्याण के लिए (सुहवं) सुखप्रद (अहोमुचं)पापों से छुड़ाने वाले (दैव्यं जनम्) आस्तिक पुरुष (अग्निं, मित्रं, वरुणं) अग्नि विद्या, प्राण विद्या, और जलविद्या में निपुण (भगं) ऐश्वर्यवान् (द्यावापृथ्वी)सूर्य भूमि वत् (मरुतः) वायुवत् बलवान इन्द्र को (हवामहे) आदर पूर्वक बुलाते हैं।

अर्थात्–हमारी आहुति पाप से छुड़ाने वाली हो हमारे सुकृत कर्म दिव्यता प्रदान करने वाले हों। पूर्ण-मासी और अमावस्या का यज्ञ सर्व प्रकार के सुखों के देने वाले स्वर्ग को लायेगा। हमने यह नहीं सोचा कि हमारे सुकृत कर्म दिव्य जन्म देंगे कि नहीं ! हम ब्राह्मण बनेंगे कि भंगी, अथवा चमार बनेंगे। हम क्षत्री बनेंगे, राजा बनेंगे, अथवा गोली खाने वाले दास क्षत्री बनेंगे।

अब समझें कि कौन से कारण से हमारे सुकृत कर्म फट जाते हैं।

दूध आग पर चढ़ाने से फट जाता है। उसके दो

कारण होंगे–एक तो दूध में मिलावट होगी अथवा पात्र अच्छा न होगा। दूध विकृत हो जाने पर नवनीत (मक्खन) तो मिलेगा नहीं, अपितु फुटियां और पानी मिलेगा। उनके गुण तो और हैं। आउलजुबन वाले दुग्ध को फिटा कर खाते हैं, पनीर खाते हैं। परन्तु जिस भावना से दुग्ध को दोहा और काढ़ा था, वह पूरी नहीं हुई। मक्खन प्राप्ति के लिए दुग्ध चोया और उबाला था, वह तो न मिला। वह कहाँ गया ? दुग्ध का चोना और काढ़ना कर्म तो सुकृत था परन्तु फल अभिष्ट न मिला। कोई दोष आ गया विधि में अथवा भावना में।

इसी प्रकार अब हम देखें कि हमारा सुकृत कर्म अभीष्ट फल लायेगा कि नहीं। मनुष्य तो हम बनेंगे परन्तु "दैव्यं जनम्" दिव्य जन-आस्तिक पुरुष अलौकिक शक्ति सम्पन्न बनेंगे कि नहीं। वैश्य बनेंगे या वेश्या बनेंगे।

जिस बात का डर लगता है उसको विचारना है। हम अपने शास्त्रों, ऋषियों की बात को नहीं मानते परन्तु जब पश्चिमी विद्वान् अथवा डाक्टर की छाप उस पर लग जाती है तो उसे तुरन्त सत्य मान लेते हैं।

इससे पूर्व के उपदेश में कह चुके हैं कि डाक्टर गीट्स ने क्रोधी, दु:खी, पश्चातापी और स्वस्थ मनुष्य के श्वाँसों का जो उस अवस्था में निकलते हैं, परीक्षण किया और हम बतला चुके हैं कि ऐसे श्वास कितने विषैले और भिन्न-भिन्न वर्ण के होते हैं।

(देखो लेखक का "सावधान")

क्रोध को दबा देने वाले को श्वास रोग (अस्थमा-दमा) हो जाता है। वह कुढता हैं उसको अन्दर-२ क्रोध जलाता है। आत्मा को पतन से बचाने के लिये तो क्रोध को दबा दे, वह तो अच्छा है।

क्रोध को दबाने वाले ३ प्रकार के मानव

तीन प्रकार के मनुष्य क्रोध को दबाते हैं!

१) वह जो आत्मा को पतन से बचाना चाहता है वह, क्रोध को दमन करता है विचार से। ऐसा व्यक्ति क्रोध अवस्था आ जाने को तथा अपनी इस क्रिया को प्रकट करने में लज्जा अनुभव नहीं करता।

२) वह जो निर्बलता के कारण क्रोध पी जाता है वह बेचारा कर तो कुछ नहीं सकता, अन्दर ही अन्दर घुलता जाता है, उसको दमा हो जाता है।

३) वह जो दिखावे से क्रोध को दबा लेते हैं, उन के चेहरे से प्रकट हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का आत्म पतन हो जाता है।

हम पर जो किसी का प्रभाव होता है, वह प्राण के द्वारा होता है, इसलिए प्राण विद्या सबको सीखनी चाहिए। योगी तो क्रोध की अवस्था में विचारों को भी जान जाता है। अन्तर्ध्यान हो कर जब प्राणों के संस्कारों को देखता है वह अनेकों प्रकार के वर्ण हो जाते हैं, वह जाने जाते है, डाक्टर नहीं जान सकते। डाक्टर गैट्स ने इन्जेक्शन द्वारा ही परीक्षण किया।

प्राण विद्या

अथर्ववेद में आया कि प्राणों के द्वारा रोग दूर होते हैं:-

आवात वातु भेषजं विवातवातु यद्रपः।

प्राणों के द्वारा रोग दूर होते हैं। प्राण विद्या जानने वाले प्राणों और विचारों के इंजेक्शन द्वारा रोग दूर कर देते हैं। क्षय रोग को ८ दिन में आराम हो जाये।

क्रोध चंडाल है

क्रोध चण्डाल है, यह निम्न सच्ची गाथा से स्पष्ट होगा-

महाराज विक्रमादित्य एक दिन अपने योगी गुरु के पास गए और पूछा कि मुझे महाराज विक्रमादित्य क्यों कहते हैं ? गुरु ने आदेश किया कि कल प्रातःकाल जिससे सर्वप्रथम भेंट हो, उससे पूछ लेना। महाराज की प्रातःकाल एक भंगिन से भेंट हो गई। महाराज के मन में संशय पैदा हो गया कि यह भंगिन मेरे इस मार्मिक प्रश्न का क्या उत्तर दे सकती है। न पूछा। गुरुजी के पूछने पर बताया कि भगवन्! भङ्गिन मिली थी, उसको नीच और अबोध समझकर मैंने नहीं पूछा। गुरु ने कहा अच्छा अब अगले दिन जो पहले मिले उस से पूछ लेना। भाग्य दूसरे दिन भी वही भंगिन मिली।

अभिमान उन्नति में बाधक

फिर न पूछा। तीसरे दिन फिर वही भङ्गिन मिली। अब राजा को पहले तो अभिमान हुआ कि मैं महाराज और यह नीच वंशोत्पन्न भंगिन! इससे क्या पूछूं। जब मैं नहीं जान सका तो यह कैसे जान सकेगी ?

सत्य है जब तक मनुष्य अपने आपको बड़ा समझता है तब तक अभिमान उसकी उन्नति के मार्ग में बाधक होता है, और वह परमेश्वर के दर्शन कभी नहीं

कर सकता। परमेश्वर का साक्षात् करने के लिए आवश्यक है कि उपासक अपने आप को पूर्ण रूपेण परमेश्वर के अर्पण कर दे। यह माया धन सम्पत्ति, यह वस्त्रादि ही मनुष्य की बुद्धि को फेर देते हैं। जब इन वस्तुओं का अभाव हो जाए तो वह छोटे से छोटा है। गुरुनानक देव जी ने कहा।

नानक उत्तम नीच न हो

अर्थात् नानक। सब जीव उत्तम हैं, नीच कोई नहीं। राजा को ऐसा प्रश्न पूछने में जो संकोच हो रहा था वह गुरु आदेश के स्मरण आते ही विलीन हो गया औरभंगिन से पूछा ! 'मुझे महाराजा विक्रमादित्य क्यों कहते हैं ?

भंगिन ने कहा, यह प्रश्न पूछना है तो यहां से एक कोश के अन्तर पर अमुक दिशा में एक ब्राह्मणी रहती है, उससे पूछो।

महाराजा जिज्ञासु बन गए

अब महाराजा जिज्ञासु बन गए। ब्राह्मणी केपास पहुंचे और पूछा कि देवी ! 'मुझे राजा विक्रमादित्य क्यों कहते हैं।'

ब्राह्मणी ने उत्तर दिया कि क्या यथार्थ पूछना

चाहते हो ? कहा—हां, तो ब्राह्मणी ने कहा, यहाँ से कुछ कोश की दूरी पर पूर्व दिशा में एक वाटिका है जो सूखी हुई है। तुम जाओगे, वाटिका हरी भरी हो जाएगी। वह वाटिका एक राजा की है उसकी सन्तान नहीं है। वाटिका के हरे भरे हो जाने पर राजा रानी तुम्हारे पास आयेंगे और सन्तान के लिए आशीर्वाद मांगेंगे। आप आशीर्वाद दे देना। वर्ष के पश्चात् उनको राजकुमार के दर्शन होंगे। उसके कुछ समझ में आ जाने पर उस बालक से पूछना।

जिज्ञासु जी उस वाटिका की ओर चल पड़े। वहां पहुँचते ही प्रभु की कृपा से वाटिका हरी भरी हो गई। वाटिका के स्वामी राजा को पता चला, एक महात्मा ऐसे आए हैं जिनकी आशीर्वाद से सूखा चमन हरा हो गया है। राजा और रानी दोनों उस जिज्ञासु महात्मा के पास पहुँचे और विनय की कि भगवन् ! हमारा गृह चमन सूखा हुआ है, वंश रूपी पेड़ मुरझा कर गिरने को है। आशीर्वाद दें कि यह तरु हरा-भरा हो जाए ! जिज्ञासु ने बड़ी दयालुता से आशीर्वाद दिया। और वर्ष बीतने पर रानी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

पुत्र बड़ा हो गया। बोलचाल करने लगा। महा-

राजा विक्रमादित्य की प्रश्नकली सींचे जाने की प्रतीक्षा में थी। महाराजा आए और बालक से वही प्रश्न किया—मुझे महाराजा विक्रमादित्य क्यों कहते हैं ?

बालक बोला

एक जंगल था, उसमें दो भाई, एक बहिन और एक मां रहते थे। वे सब तपस्वी थे। एक बार सात दिन पर्यन्त उनको कोई भोजन न मिला। आठवें दिन कुछ आटा आदि मिल गया, मां ने खाना बनाया और परोस कर सबके आगे धरा। अभी तपस्वी परिवार ने खाना आरम्भ नहीं किया था कि एक योगी साधु जो कई दिनों की समाधि के बाद उठा था और क्षुधा से अत्यन्त कृष हो रहा था, द्वार पर आया और कहा कि अतिथि भूखा है, कुछ अन्न खिला दो।

बड़ा भाई प्रसन्नता से उछल पड़ा कि द्वार पर अतिथि भगवान् आया है। पढ़ और सुन रखा था कि जिस द्वार से अतिथि निराश अथवा तिरस्कृत जाता है उसका सब कुछ नाश हो जाता है। झट अपनी थाली उठाई और साधु के भेंट कर दी। साधु ने वह भाग पान किया परन्तु तृप्ति न हुई।

साधु ने अभी भोजन खाना आरम्भ न किया था कि दूसरे भाई के मन में विचार आया कि मैं भी न खाऊं शायद साधु की पूरी तृप्ति न हो। प्राय: सबको ऐसा विचार आया।

अतिथि सेवा न होने से हमारे अन्त:करण शुद्ध नहीं होते। अतिथि सेवा ही अन्त:करण की शुद्धि की एक अचूक औषधि है। पहले अतिथि रज ले। यह भावना मन में उठी। साधु ने बड़े भाई के भाग का भोग किया परन्तु तृप्त न हुये। और मांगा, अब छोटे भाई ने अपनी पत्तल आगे धर दी। साधु ने वह भी खा ली। बहिन ने एक रोटी अपनी निकाल रखी थी कि, मेरी बारी आएगी तो मैं भी दे दूंगी। साधु ने जब कहा अभी भूख बाकी है तो माँ ने उठाया लठ और अपशब्द कहती हुई साधु की ओर लपकी, कि दुष्ट ! तू मेरे सात दिन के भूखे बच्चों को भूखा मारना चाहता है। साधु आगे और वह पीछे-पीछे दौड़ पड़ी। साधु जान बचा कर निकल गया। अब बालक बोला, कि तू पहला था जिसने पहले अपनी थाली अतिथि को भेंट की, इसलिये तुझे महाराजा विक्रमादित्य कहते हैं। और मैं विलम्ब से राजकुमार बना कि जिसने आपके बाद सेवा का सौभाग्य

प्राप्त किया। यह ब्राह्मणी बहिन थी जिसने एक रोटी निकाल रखी थी। और वह भंगिन हमारी माँ थी जिसने आवेश में आकर लठ उठा लिया था। क्रोध चंडाल है, चण्डाल के घर वासा देता है।

अक्रोध के ये नौ साधन हैं

मनु महाराज ने फरमाया, क्रोध को जीतना बहुत कठिन है। जब तक मानव पूर्व के ९ साधनों पर अधिकार नहीं पा लेता क्रोध पर विजय नहीं हो सकती।

वे साधन कौन से हैं ?

सुनिये। मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण बताए-

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्ः ॥

अर्थात्–१. धृति, २. क्षमा, ३. दम, ४. चोरी न करना, ५. शौच, ६. इन्द्रिय निग्रह, ७. धी (बुद्धि), ८. विद्या, ९. सत्य और १० अक्रोध (क्रोध न करना) धर्म के ये दस लक्षण हैं।

अब विस्तार से सुनिए

अक्रोधी बनने अथवा क्रोध पर विजय पाने के

लिए सर्व-प्रथम धृति-धर्य की आवश्यकता है । एक बात की गांठ बांध लें कि क्रोध की वंशावली में मोह, काम, लोभ और अहंकार रूपी ये बली सन्तान हैं । जहां धर्य होगा वहां मोह न होगा और जहां मोह न होगा वहां धैर्य न होगा । अतः क्रोध को समूल नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम मोह का नाश कीजिए, अर्थात् अपने अन्दर धैर्य का गुण उत्पन्न कीजिए ।

दूसरा गुण जिसको प्राप्त करना है, वह है क्षमा । क्षमा के भाव हैं किसी के कटु व्यवहार अथवा वचन को सहन करना, प्रतिकार का भाव अपने अन्दर न लाना । प्रतिकार का भाव आया नहीं कि क्रोध-द्वेष का अंकुर फूटा नहीं । प्रतिकूल वातावरण बन जाने पर भयंकर रूप धारण करके विनाश का कारण बन जाएगा, वेद ने कहा —

ऐ मनुष्यो ! तुम क्षमा करना सीखो । क्षमा तब करो जब अपराधी पश्चाताप कर ले, 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'

क्षमा वीर का भूषण है । अहंकार के कारण क्षमा नहीं होती । वेद में आया 'मानो वधाय हन्त्वे जिहीड़ानस्य रीरुधः । माहृणानस्य मन्यवे' ! भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जो अल्पबुद्धि अज्ञानी

जन अपनी अज्ञानता से तुम्हारा अपराध करें, तुम उस को दण्ड ही देने को मत प्रवृत हो और वैसे ही जो अपराध करके लज्जित हो अर्थात् तुम से क्षमा करावे तो उस पर क्रोध मत छोड़ो, किंतु उस का अपराध सहो और उसको यथावत् दण्ड भी दो।

तीसरा गुण है दम—इन्द्रियों का दमन करना। दमन न करेंगें तो हम संभल न सकेंगें। कामी आदमी दमन नहीं कर सकता।

चौथा गुण है अस्तेय–चोरी न करना। दूसरे की चीज का लोभ करना भी चोरी है। आत्मा का सबसे सूक्ष्म यन्त्र संकल्प है। संकल्प से भी चोरी हो सकती है जैसे किसी की उत्तम वस्तु देखी संकल्प हुआ कि मेरी हो जाए। द्रव्य की चोरी के अलावा विचार ज्ञान की चोरी भी होती है। चोरी का मूल कारण लोभ है। लोभ के कारण मनुष्य अस्तेय नहीं कर सकता।

पाँचवां गुण है शौच—मन की अपवित्रता का कारण राग द्वेष है। जहां राग द्वेष है वहा सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्रोध के कारण अपवित्रता नहीं आ सकती।

छठा गुण है इन्द्रिय निग्रह–इन्द्रियों की पड़ताल

करना। दम और इन्द्रिय निग्रह में यह भेद है कि दम के अर्थ हैं पाप वृत्ति को दबाना और इन्द्रिय निग्रह का अर्थ है पाप वृत्ति को रोकना, आने न देना। इन्द्रिय निग्रह मानो एक चौकीदार है जो द्वार पर बैठा हुआ अन्दर प्रवेश करने वाले को अन्दर जाने से रोक देता है। जैसे रात्रि को गश्ती सिपाही किसी को दूर से आते देख कर कहता है—Who comes there ?

इन छः गुणों की समाप्ति पर सातवें गुण धी—बुद्धि की उपलब्धि होती है। तब बुद्धि से विद्या की जो आठवां गुण है, और विद्या से सत्य की, जो नवाँ गुण है, प्राप्ति होगी। बस आखिरी मंजिल क्रोध पर विजय अर्थात् अक्रोध की प्राप्ति स्वयं सिद्ध हो जाएगी।

अब प्रश्न यह है कि इन गुणों को धारण कैसे किया जाए ?

इन गुणों को धारण करने के लिये सबसे पहले श्रद्धा चाहिए। श्रद्धा बीज है। वेद ने फरमाया—

'श्रद्धया सत्यमाप्यते' यजु० १९-३० ॥ श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। इसलिए जहां सत्य है, वहां हम उसका आदर करें। सत्य वेद में है। वेद तो जड़ है,

यदि इस भावना से हम वेद का आदर न करेंगे तो हमारी बुद्धि भी जड़ हो जाएगी।

अपने धर्मग्रन्थों के प्रति श्रद्धा है सिखों में, श्रद्धा है मुस्लमानों में। सिख लोग तो ग्रन्थ साहिब को गुरू की देह मानते हैं। उनका विश्वास है कि इसके बाद और गुरू नहीं होगा। अपने ग्रन्थ का वे इतना मान करते हैं कि यदि वे झाड़ू देंगे तो ग्रन्थ साहिब को सिर पर उठा लेंगे और झाड़ू भी देते जायेंगें और साथ साथ 'एक ओंकार सत् गुरू प्रसाद···' की घोषणा भी करते जायेंगे। ग्रन्थ साहिब को जमीन पर नहीं रखेंगे। हम आर्यों की तो अपने वेद के प्रति इतनी श्रद्धा है कि जहां-तहां पड़े रहें परवाह नहीं। चाहे उन पर मिट्टी पड़ी पड़े चाहे दीमक खा जाए।

श्रद्धा तो मिलेगी चेतन में, जड़ में नहीं। चेतनता तो मनुष्यों में है। वह चेतनता ज्ञानियों के मस्तिष्क में रहती है। इसलिए हमें चाहिए कि हम उसका मान करें, आदर करें। परोक्ष अपरोक्ष एक समान हो। भीतर बाहर में अनुकूलता हो।

श्रद्धा को बीजो

हृदयरूपी भूमि में श्रद्धा को बीजो। जैसे गेहूं बोया उसका सुंढा बन गया, पक कर छः मास में गिर पड़ा। जड़ दूर तक भूमि में न जा सकी। जिसकी जड़ भूमि तल तक जाएंगी, वह पेड़ सदा हरा भरा रहेगा। कारण कि उस जड़ में सूक्ष्म तन्तु हैं जो शही तक पहुंचते हैं। वह जल शही से खिचकर जड़ में और जड़ से मूलाधार (तने) में, वहां से शाखाओं में, पत्तों में, फूलों आदि में, पेड़ के अंग-२ में पहुँचता है। इसलिये सूर्य का ताप उन शहीं को तपा नहीं सकता। तो भाइयो ! इसी प्रकार जिस व्यक्ति की श्रद्धा रूपी मूलाधार की जड़ नम्रता है और नम्रता की सूक्ष्म तन्तुएं उदारता और पवित्रता रज्जू बनकर परमात्मा रूपी शहीं (मूल) केन्द्रीय सरोवर तक पहुंच गईं वह व्यक्ति वहां से अमृत रस खींच कर नम्रता में, नम्रता से श्रद्धा में और श्रद्धा से कर्म रूपी पेड़ में और फिर उसके पत्तों (वासनाओं) में और फलों में पहुँच कर आनन्द रसपान करता हुआ सदा हरा भरा रहेगा और संसार के भयंकर से भयंकर ताप भी उसे नहीं तपा सकेंगे। वह सदा शान्त और हरा भरा रहेगा। प्रभु करें कि ये मर्म की बातें हमारे कानों से गुजरती हुई हमारे हृदयों में टिक जाएं और हम सदा सावधान रहकर जीवन का उत्थान और कल्याण करते जाएं। ओ३म् शम्

पूज्य गुरुदेव महा० प्रभु आश्रित जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची

गायत्री रहस्य	25-00	गृहस्थ सुधार	24-00
दृष्टान्त मुक्तावली	15-00	मन्त्र योग भाग 1 और 2	15-00
पृथिवी का स्वर्ग	10-00	मन्त्र योग भाग 3 और 4	12-50
यौगिक तरंगें	5-00	गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	6-00
चमकते अंगारे	4-00	वर घर की खोज	6-00
जीवन सुधार	6-00	विचार विचित्र	4-00
मनोबल	6-00	योग युक्ति	6-00
जीवन निर्माण	5-00	सेवाधर्म	6-00
जीवन यज्ञ	7-00	स्वप्न गुरु तथा देवों का शाप	4-00
सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं	5-00	निराकार साकार पूजा	3-00
व्रत अनुष्ठान प्रवचन	2-00	एक अद्भुत किरण	1-50
गायत्री कुसुमाञ्जली	2-00	निर्गुण सगुण उपासना	3-50
बिखरे सुमन	5-00	जीवन गाथा	5-00
समाज सुधार	1-50	दुर्लभ वस्तु	2-00
साधना प्रचार	5-00	भाग्यवान गृहस्थी	1-25
अमृत के तीन घूंट	2-00	संभलो	3-00
आदर्श जीवन	5-00	हवन मन्त्र	3-00
उत्तम जीवन	1-50	जीवन चरित्र पहला भाग	2-00
आत्म चरित्र	9-50	डरो वह बड़ा जबरदस्त है	6-00
पावन यज्ञ प्रसाद	2-00	रहस्य की बातें	10-00
जीवन चरित्र चौथा भाग	3-00	योग दर्शन	8-00
अध्यात्म सुधा भाग चार	18-00	सामवेद	50-00
कर्म भोग चक्र	15-00	यजुर्वेद	60-00

(विशेष शताब्दी पुस्तकें)

प्रभु का स्वरूप	12-00	यज्ञ रहस्य	16-00
आत्म कथा महा० प्रभुआश्रित जी की	14-00	सन्ध्या सोपान	14-00

ग्रेजुएट प्रैस, बजरंग भवन के पीछे देहली रोड, रोहतक । फोन : 42673